अध्याय–8

राजस्थान की मूर्तिकला

स्थापत्य और मूर्ति का गहन सम्बन्ध है। मंदिर, महल, निवास, स्तंभ आदि सभी में कुछ न कुछ तराशा जाता है। वस्तुतः स्थापत्य में जो भावना और कल्पना है वही मूर्तिकला है। यही कला देश की सांस्कृतिक प्रगति, मानव जीवन, धार्मिक–चिन्तन आदि का प्रतिबिम्ब है। प्राचीन भारतीय कलाएं धर्म के वटवृक्ष की छत्रछाया में पल्लवित हुईं, जिसकी परिणति मंदिरों व उनकी कलात्मक मूर्तिकला में हुई है। इस दृष्टि से राजस्थान की संस्कृतिगर्भा भूमि का विशिष्ट योगदान है जहाँ मूर्तिकला का प्रस्फुटित पुष्प भारतीय कला की धरोहर है। यहाँ से प्राप्त मूर्तिकला की अनन्त व अद्भुत सामग्री का इतिहास लगभग 5,000 वर्ष पूर्व कालीबंगा और बनास की नदी घाटी सभ्यताओं से प्रारंभ होता है। इन क्षेत्रों से प्राप्त मुहरें, मृणभाण्ड, खिलौने, हथियार व विविध उपकरण आदि राजस्थान की मूर्तिकला, रूप व आकृति के सूक्ष्म बोध व सौन्दर्य बोध के परिचायक हैं।

मूर्तिकला की प्रगति राजस्थान में मौर्य व मौर्योत्तर काल में प्रस्फुटित हुई। रेढ़ (टोंक जयपुर के आसपास का क्षेत्र) के उत्खनन में प्राप्त मुद्राएँ व मृणमूर्तियाँ मूर्तिकला की शैली, आकृति व भावों की अभिव्यक्ति की दक्षता को परिलक्षित करती हैं। मातृदेवी की मूर्तियों में आवक्ष आवरण व आभूषणों की कलात्मकता दर्शनीय है। इसी प्रकार शिव पार्वती की नृत्य मुद्रा और उनकी वेशभूषा तथा मिट्टी के खिलौनों में कलात्मक सूक्ष्मता अद्भुत है। इन मूर्तियों में भावों व आंगिक गतिविधियों का विन्यास अतिसुन्दर है। यह कला जन–साधारण से जुड़ी हुई थी।

ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में शुंगकालीन संस्कृति ने धार्मिक प्रभाव और जनसाधारण की रुचि के संयोग से राजस्थान की मूर्तिकला को नया मोड़ दिया। इस समय बुद्ध, महावीर, कृष्ण, वासुदेव, वसुन्धरा देवी, जीव–जन्तु और फूल–पत्ते मन्दिरों व स्तूपों की सजावट के विषय बन गये। इस समय के कलावशेष नोह, अधापुर, सोगर, पीरनगर, चौमा, भांडपुरा, नांद, रंगमहल, सांभर, नगर, पीलीबंगा आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। चितौड़ के पास मध्यमिका से कृष्ण–बलराम की स्वतंत्र व उत्कीर्ण आकृतियाँ व प्रतीक चिह्न मिले हैं। यह स्थान तत्कालीन कला के पोषण का केन्द्र था। यहाँ के उत्कीर्ण बौद्ध स्तूप तथा नारायण वाटिका की वैष्णव प्रतिमाएँ तत्कालीन धार्मिक जीवन व मूर्तिकला की साक्षी है। इसी प्रकार बीकानेर के पास रंगमहल से एकमुखी शिवलिंग, पशु एवं वल्लरी जगत् की आकृतियाँ, नर–नारी के विविध रूप मिले हैं जिनमें वस्त्राभूषण, घुंघराले बाल व मूँछें सजीव व स्वाभाविक हैं। इनमें वन सम्पदा और जनजीवन का संयोग भी परिलक्षित होता है। जानवरों की आकृतियाँ अत्यन्त सजीव व स्वाभाविक हैं। भरतपुर के पास नोह, अधापुर, बीराबई, सोगर, पीरनगर (गंगानगर) आदि स्थानों से प्राप्त यक्ष–यक्षी की प्रतिमाएँ भरतपुर संग्रहालय में सुरक्षित हैं। चौमा, भंड़पुरा, गामड़ी (भरतपुर) आदि स्थानों से भी शिव मूर्तियाँ मिली हैं। अजमेर के निकट नांद से प्राप्त शिवलिंग के नीचे के भाग में वैष्णव देव परिवार का अंकन है। मालव नगर (टोंक) से खड़िया मिट्टी में देवी की प्रतिमा मिली है, जो हवामहल संग्रहालय जयपुर में है। विराटनगर (जयपुर), लालसोट (जयपुर), नोह (भरतपुर), नगरी, रेड (टोंक) से बौद्ध मूर्तियाँ, बौद्ध मंदिर, स्तूप उत्खनन में मिले हैं। इनमें वर्तुलाकार बौद्ध मंदिर, स्तूप के छत्र, विहार मठ, वेदिका स्तंभ, बोधिसत्व मैत्रेय, केशमुंडित बुद्ध शीर्ष, वसुधारा आदि की मूर्तियाँ भी हैं।

इसके पश्चात् राजस्थान की मूर्तिकला गुप्तकाल में प्रवेश करती है जहाँ एक नया दृष्टिकोण और

चेतना मिलती है। गुप्तकाल भारतीय मूर्तिकला का स्वर्णयुग रहा है। इस काल में साहित्य, संगीत एवं कला के विभिन्न आयामों के रूप में मानव की परिष्कृत रुचि, कला–प्रेम व सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति हुई, जिससे राजस्थान भी अछूता नहीं रहा। राजस्थान में इस समय के अवशेष मुकन्दरा, चारधोमा, गंगधार (हाड़ौती), नगरी (चितौड़गढ़), मंडोर (जोधपुर), सरस्वती उपत्यका (गंगानगर) में भव्य देवालय के स्थापत्य खण्डों व मूर्तियों के रूप में मिले हैं। तत्कालीन कलापीठों में रंगमहल, भरतपुर, विराटनगर, रेड, कल्याणपुर, डूंगरपुर आदि प्रमुख हैं जहाँ शिव, विष्णु, यक्षी आदि की प्रतिमाएँ निर्मित हुई हैं। तोरणद्वार भी बनाये जाने लगे। पशुओं व भागवत् पुराण से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं को भी उकेरा गया है। रंगमहल की दानशीलता और गोवर्धन धारण, पायजेब से सुशोभित नारी के पैर, स्त्री पुरुषों के मस्तक और पक्षियों की आकृतियाँ अद्वितीय हैं। कल्याणपुर व श्यामलाजी से प्राप्त शंकर, विष्णु व यक्षी की मूर्तियाँ शारीरिक सौन्दर्य की दृष्टि से अद्भुत हैं। नारी मूर्तियों में तो सौन्दर्य व स्वाभाविकता का अद्भुत संगम है। वस्तुतः इस समय राजस्थान की मूर्तिकला में विभिन्न प्रयोग, अभिप्रायों व उद्भावनाओं के विविध माध्यम, देव प्रतिमाओं की सौम्य आकृतियाँ, जीवन्त भावभंगिमा, केश रचना की विविधता, कलात्मक प्रभामण्डल, देव परिवार एवं आयुध पुरुष तथा तोरणद्वारों का विस्तार हुआ जो गुप्तकाल का निजस्व था।

अद्भुतनाथ मंदिर, चित्तौडगढ़

गुप्तकाल के पश्चात् राजस्थान की कला मध्यकाल में एक नया मोड़ ले लेती है। विगत कला परम्पराओं ने मध्यकाल में नये मानदण्डों को निर्धारित किया, जिससे हिन्दू संस्कृति में नई स्फूर्ति आई, जिसका परिष्कृत रूप मूर्तिकला में प्रस्फुटित हुआ। छठी से बारहवीं शताब्दी तक मध्य युग में मूर्तियों का निर्माण बहुतायत से हुआ। राजा व प्रजा के सहयोग से अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ, जिन्हें कलाकारों ने अपनी भावना के अनुरूप मूर्तियों व उत्कीर्ण शिल्पों से अलंकृत किया। युद्ध की प्रचुरता के कारण युद्धोचित दृश्यों को भी महत्त्व दिया गया। पौराणिक गाथाओं द्वारा शौर्य को अभिव्यक्ति दी गई तथा युगल प्रेम से श्रृंगारमय जीवन को अभिव्यक्त किया गया। इस काल की मूर्तिकला के मुख्य केन्द्र आबानेरी, अटरू, आबू, बाडौली, नागदा, चित्तौड़गढ़, किराडू, ओसियाँ, अथूना व सीकर आदि हैं।

आंबानेरी जयपुर जिले में है जो चाँद बावड़ी तथा नवीं शताब्दी के हर्ष माता मंदिर की मूर्तियों के कारण सुप्रसिद्ध है। यहाँ नागराज व दम्पति, अर्द्धनारीश्वर तथा नृत्य करती हुई मातृकाओं की गंभीर मुद्राएं एवं भव्यता अद्वितीय है। हाड़ौती में अटरू के शिव मंदिर में स्तंभों पर तराशे गए अलंकरण तथा पार्वती की मूर्ति सुन्दर व भावपूर्ण है। यहाँ की कला में मंदिर की भव्यता में बारीकी को महत्त्व दिया गया है।

देलवाड़ा के जैन मंदिर

देलवाड़ा गाँव आबू पर्वत पर चार हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यहाँ दो जैन मंदिर भारतीय कला जगत् की एक नवीन लोक चेतना के श्रेष्ठ उदाहरण है। यहाँ अलंकरणों का आधिक्य तथा अलंकरण व मूर्तियों की पुनरावृत्ति हुई है तथापि विलक्षण जालियों, बेल–बूँटों व नक्काशियों को देखकर आश्चर्य

होता है। संगमरमर को बारीकी से तराशा गया है, मानो हस्तकला के नमूनों ने प्रस्तर का रूप ले लिया हो। यहाँ पहुँचकर लगता है कि किसी अद्‌भुत स्वप्न लोक में आ गये हों।

प्रथम मंदिर 1032 ई. में विमल शाह द्वारा व द्वितीय मंदिर 1232 ई. में तेजपाल द्वारा बनवाया गया। दोनों मंदिर आशिखरान्त संगमरमर प्रस्तर से बने हैं। छत के गुम्बद की आन्तरिक सज्जा अत्यन्त बारीक, कलात्मक, गतिपूर्ण तथा बेजोड़ है। नृत्यांगनाओं, संगीतज्ञों की मूर्तियों के बीच पुष्पों के झाड़ फानूस की निर्माण कुशलता अद्‌भुत है। ऐसा लगता है कि झाड़फानूस के पुष्पों की प्रत्येक पंखुड़ी सजीव है। यहाँ जैन तीर्थंकरों, वैष्णव, कृष्ण लीला, समुद्र मन्थन, होली खेलते कृष्ण गोपी, कृष्ण की बाल लीलाएँ आदि विषय उकेरे गये हैं, जिनमें रूपाकृतियाँ, इकहरे बदन, तीखे नाक नक्श, सौन्दर्यपूर्ण भंगिमाओं, पारदर्शी वस्त्रों तथा अनेक आभूषणों से अंलकृत हैं। अलंकरणात्मकता, कला–कौशल, अनन्य मूर्तियों की उत्कीर्णता से सज्जित इन मंदिरों में रूप की अभिव्यक्ति तो हुई है, किन्तु ये भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से शून्य है। अत्यधिक अलंकरणात्मक व विवरणात्मक स्वरूप के साथ यहाँ पुनरावृत्ति को महत्त्व मिला है। अर्थात् एक ही अलंकरण व रूप को बार–बार अंकित किया गया है। पर रूप–माधुर्य व वास्तविक अनुभव इन कलात्मक आकारों में दृष्टिगत होता है। इन मंदिरों का बाह्य आकार साधारण है। पर मूर्तिकला का पक्ष मंदिर के आन्तरिक सौन्दर्य को कला की उत्कृष्टता पर पहुँचा देता है। प्रथम मंदिर आदिनाथ का है, जिसमें हस्तिशाला का निर्माण बाद में हुआ है। दूसरा मंदिर नेमीनाथ का है।

देलवाड़ा मंदिर की छत

वस्तुतः देलवाड़ा के दोनों जैन मंदिर भारतीय अलंकरणात्मक कला व सोलंकी कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यही परम्परा आबू के पास चन्द्रावती व सिराही के अनेक मंदिरों में देखी जा सकती है। इन अलौकिक व दिव्य मंदिरों का कौशल इतना उत्कृष्ट है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता बल्कि मपलंक देखा ही जा सकता है। राजस्थान की अरावली पर्वतमालाओं के मध्य नैसर्गिक सौन्दर्य में ये श्वेत मंदिर विलक्षण हो जाते हैं। वस्तुतः इन मंदिरों के अज्ञात शिल्पियों ने अपना समस्त जीवन कला साधना में लगा दिया तथा आने वाले शिल्पियों के लिए कला साधना व कला समर्पण का नमूना प्रदान कर स्वयं ब्रह्मलीन हो गये। राजस्थान के जैन मंदिर हिन्दू धर्म के समान ही सांस्कृतिक उत्थान में सहायक रहे हैं। जैन धर्म ने भी कला व संस्कृति का संवर्द्धन करने के साथ कलात्मक धरोहर को सुरक्षित रखा है। गुर्जर, प्रतिहारों, गुहिलों, चौहानों, परमारों और सोलंकियों ने धार्मिक सौहार्द के कारण हिन्दू मंदिरों के साथ ही जैन मंदिर भी बनवाये। राजस्थान में यह परम्परा 7 वीं शताब्दी से विस्तार लेने लगी और यही परम्परा आज भी चल रही है।

मध्य युग मूर्तिकला की दृष्टि से समृद्ध रहा है। राजस्थान में भी विभिन्न स्थानों पर बहुतायत से मंदिरों का निर्माण हुआ, जिन्हें मूर्तियों व उत्कीर्ण शिल्पों से सज्जित किया गया। इनमें चम्बल नदी के किनारे हाड़ौती क्षेत्र में बाडौली का शिव मंदिर भी युगल प्रेमियों के अंकन, नारियों के स्वाभाविक व मासूम चेहरों, अलंकरणों व शारीरिक सौन्दर्य तथा स्तंभों की उत्कीर्णता का अद्वितीय उदाहरण है। यहाँ चन्द्रावती मंदिरों का समूह भी है, जिनकी नक्काशीदार छतें तथा नारी का सुन्दर अंकन अन्यत्र नहीं मिलते।

इसी प्रकार मारवाड़ में किराडू के मंदिरों की मूर्तियाँ भी तत्कालीन कला के बेजोड़ उदाहरण हैं। मंदिर अन्दर व बाहर दोनों तरफ से अलंकृत हैं। यहाँ पौराणिक कथाओं का अंकन है, जिनमें शेषशायी विष्णु, अमृत मंथन, बंशी बजाते कृष्ण, माता व शिशु आदि की सुन्दर, भावात्मक व रोचक प्रस्तुति है। इसी क्षेत्र में ओसियां नामक स्थान पर भी बारह बड़े मंदिर विविध प्रकार की मूर्तियों व बेलबूटों के अलंकरण के कारण प्रसिद्ध हैं। यहाँ वैष्णव, शैव, देवी व जैन मंदिर साथ–साथ बने हैं। मूर्तियों में गति, शौर्य, स्वाभाविकता एवं सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का संगम मिलता है। उदयपुर से 15 किलोमीटर दूर नागदा सहस्रबाहु (सास बहु) के मंदिर के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इस मंदिर समूह में सहस्रबाहु के मंदिर का तोरण द्वार, स्तंभों, छत तथा परिक्रमा के चारों ओर उत्कीर्ण शिल्प, जालियाँ, पुतलियाँ, अलंकरण व नक्काशी देख कर दर्शक आश्चर्य चकित रह जाता है। हाथी–घोड़े तथा योद्धाओं के आक्रमण प्रस्थान के उत्कीर्ण शिल्पों में शौर्य व गति का श्रेष्ठ परिपाक है। चित्तौड़ में भी आठवीं शताब्दी से 15 वीं शताब्दी तक के उत्कृष्ट शिल्प मिलते हैं। सर्वप्राचीन सूर्य मंदिर की मूर्तियाँ, समाधिश्वर मंदिर के बाहर देवी–देवता, अप्सरा, आक्रमणोन्मुख सेना के अस्त्र–शस्त्र व साज–सज्जा दर्शनीय है। बांगड़ प्रांत में अर्थुना भी 11 वीं व 12 वीं शताब्दी में मूर्तिकला का मुख्य केन्द्र रहा है। यहाँ शिव, विष्णु, हनुमान, जैन आदि मंदिरों के अवशेष मूर्तिकला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। देवी–देवता, यक्ष–यक्षी, उत्कीर्ण स्तंभ, गर्भ–गृह, सभा मण्डप तथा विविध स्थानों पर लगी मूर्तियाँ, गरुड़ पर बैठी विष्णु की विराट प्रतिमा, दिग्पाल, यमराज की प्रतिमा, अग्नि, सूर्य व कुबेर की मूर्तियाँ अद्भुत हैं, जो सौन्दर्य की सीमा से भी परे हैं। अप्सराओं की मूर्तियाँ भी क्रीड़ा, श्रृंगार, पूजा–अर्चना आदि विविध रूपों में पशु–पक्षी, लता–वृक्ष, वादिन्त्रियों के सहयोग से सजीव हो उठी हैं। अलवर की पारानगर व नीलकण्ठ महादेव में भी शिल्प कला के अद्भुत उदाहरण फैले पड़े हैं। 15 वीं शताब्दी के बाद उत्तर मध्यकाल में मूर्तिकला प्राचीन परम्परा और शासकों की रुचि के कारण जीवित रही। वस्तुतः राजनीतिक परिवर्तन के कारण मंदिर निर्माण को आघात पहुँचा और मूर्तिकला ह्रासोन्मुख होने लगी किन्तु इस समय भी गुहिल व भाटी राजवंशों ने राजस्थान में मूर्तिकला परम्परा की गति को बनाए रखा। महाराणा कुम्भा वास्तुकला के महान संरक्षक थे। उनके समय में कुंभलगढ़, चित्तौड़गढ़ व अचलगढ़ (आबू) में बने भव्य मंदिर राजस्थान की मूर्तिकला को पुनर्जीवित करते हैं। तीनों केन्द्रों में 'कुंभ स्वामी' नाम से विष्णु मंदिर बने। चित्तौड़ का कीर्ति स्तंभ भी 'कुंभ स्वामी' मंदिर का विष्णु स्तंभ है। इनमें रूप मंडन के आधार पर मूर्ति निर्माण हुआ है। इस श्रृंखला में पश्चिमी मारवाड़ के रणकपुर के जैन मंदिर विशेषोल्लेखनीय हैं।

रणकपुर के जैन मंदिर

पश्चिमी मारवाड़ के पाली जिले में रणकपुर के विश्व प्रसिद्ध जैन मंदिर हैं, जो जैन धर्मावलम्बियों के पाँच प्रमुख धर्म स्थलों में से एक हैं। महाराणा कुंभा ने मेवाड़ में वास्तुकला को संरक्षण देकर अद्भुत इतिहास की रचना की। उसी से प्रेरित होकर ये मंदिर निर्मित किए गए। पन्द्रहवीं शताब्दी के ये जैन मंदिर अलंकृत स्तंभों के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। मुख्य मंदिर का निर्माण पोरवाल जाति के धर्मानुरागी धन्ना शाह और रत्ना शाह द्वारा करवाया गया था। यह चतुर्मुख आदिदास मंदिर के नाम से विख्यात है। इसका निर्माण सोमपुरा शिल्पज्ञ देपाक के निर्देशन में पचास से भी अधिक शिल्पियों ने किया था। इस मंदिर के गर्भ–गृह में युगादिश्वर ऋषभ नाथ मूल नायक के रूप में पूजित है जो सर्वतोभद्र समवसरण प्रतिमा है। इस प्रतिमा के दर्शन चारों दिशाओं से किए जा सकते हैं। यहाँ किन्हीं दो स्तंभों के अलंकरण तक एक जैसे नहीं हैं, जिससे कलाकार की कार्यकुशलता एवं सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता

है। मंदिर 48 हजार वर्ग फीट का क्षेत्र घेरे है, जिसमें 24 मंडप, 85 शिखर तथा 1444 स्तंभ अद्भुत कला कौशल के परिचायक हैं। इस मंदिर को 'त्रैलोक्यि दीपक' भी कहा जाता है। यहाँ भव्य तोरण द्वार, सभा मण्डप के ऊपरी भाग में कलात्मक मूर्तियाँ, मंदिर के चारों ओर मंडपों में अवस्थित देव कुलिकाओं की प्रतिमाएँ इस मंदिर को अलौकिक स्वरूप प्रदान करते हैं। देव कुलिकाओं की मूर्तियों में सुन्दर शारीरिक सौष्ठव, भाव भंगिमाएँ, मनमोहक मुद्राएं, प्रफुल्लित मुख मण्डल, क्षीण कटि, तीक्ष्ण भौंहें, विशाल नेत्र, कलात्मक आभूषण, पारदर्शी वस्त्र, अनुपम केश विन्यास तथा भावाभिव्यंजक हस्त मुद्राएं, प्रस्तर खण्डों में भी जीवन का स्पंदन अनुभव कराते हैं। ये नारी प्रतिमाएं स्तंभों से लिपटी, वाद्य यंत्र बजाने में मग्न तथा नृत्य की मोहक मुद्राओं में अलौकिक सौन्दर्य को व्यक्त करती हैं। अनेक देवी–देवता, यक्ष–यक्षी, गंधर्व, किन्नर, वानर तथा जैन धर्म पर आधारित अनेक कथाओं को भी उत्कीर्ण किया गया है। यहाँ के राणक स्तंभ की नक्काशी भी अद्भुत है। स्तंभों व छतों पर फूल–पत्तियाँ व जालियाँ तथा ज्यामितिक अलंकरण भी बेजोड़ व मनमोहक हैं, जो हाथी दाँत पर खुदाई के अनुरूप लगते हैं। मंदिर का बाहरी भाग साधारण है। यह तीन मंजिला विशाल मंदिर दो प्रकार के प्रस्तर से बना है। मंदिर की नींव तथा उसके चबूतरे के निर्माण के लिए साधारण 'सेवादि' पत्थर का प्रयोग है तथा ऊपरी भाग उच्च श्रेणी के 'सोनाना' प्रस्तर से बना है। कुछ विशिष्ट मूर्तियों के लिए बाहर से भी प्रस्तर आयात किया गया था। यहाँ दो अन्य मंदिर तीर्थंकर पार्श्वनाथ व नेमीनाथ के भी हैं। आठवीं शताब्दी में निर्मित एक विशाल सूर्य मंदिर भी है। यह मंदिर भारतीय शिल्प कला व कला इतिहास की अमूल्य निधि है।

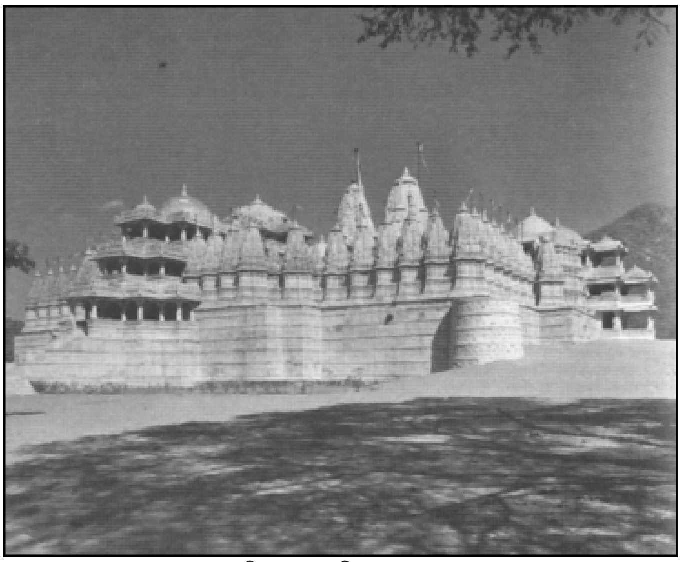
आदिनाथ मंदिर, रणकपुर

वस्तुतः मध्यकालीन मूर्तिकला में नारी सौन्दर्य की शाश्वत व उत्तेजक मुद्राओं को बखूबी उत्कीर्ण किया गया। वे स्वयं के सौन्दर्य में ही डूबी हुई दृष्टिगत होती हैं। इस अन्तराभिमुखी भाव को व्यक्त करने के लिए प्रायः आँखों की पुतलियाँ नहीं बनाई गई हैं। लगभग प्रत्येक मंदिर विशेषतः शिव मंदिरों में रति–मग्न युगल मिलते हैं। भुर्जी को छोड़कर मंदिर के प्रत्येक भाग पर सेना की टुकड़ियाँ, त्यौहार, खेल कूद, दरबारी दृश्य, लौकिक दृश्य उकेरे गए हैं। शिव की नटराज व ताण्डव नृत्य की मुद्रा में भी कुछ सुन्दर मूर्तियाँ बनाई गई हैं, 17 वीं शताब्दी के पश्चात् भारतीय मूर्तिकला के पतनोन्मुख होने का प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा। मूर्तियाँ व स्थापत्य निरन्तर निर्मित हो रहे हैं, किन्तु उनमें पहले जैसा चमत्कार नहीं है। फिर भी कुछ स्थानों पर प्राचीन परम्परा का निर्वाह दृष्टिगत होता है जिनमें मूर्तिकला के पुनरुत्थान का आभास होता है। जैसलमेर दुर्ग में लक्ष्मीनाथजी का विशाल वैष्णव मंदिर एवं चितांमणी पार्श्वनाथ (जो बावन जिनालयों व तोरण द्वार से सज्जित है) मंदिर उल्लेखनीय है। आमेर ,जयपुर में जगत शिरोमणी का भव्य

मंदिर भी तोरण द्वार व गरुड़ छतरी के कारण प्रसिद्ध है। विराट नगर में भी तीर्थंकर विमलनाथ का तोरण द्वार युक्त मंदिर है। इनके अतिरिक्त नृसिंह मंदिर, (आमेर), पाटन मंदिर (हाड़ौती), जगदीश मंदिर (उदयपुर) भी प्रसिद्ध हैं। 17–18 वीं शताब्दी में मंदिरों में पुष्टिमार्ग के प्रभाव से शून्यता व सादगी को महत्त्व दिया जाने लगा, जिससे मुख्य छवि को प्रमुखता मिली। श्रीनाथजी (नाथद्वारा), द्वारिकाधीशजी (कांकरौली), मथुरेशजी (कोटा), गोविन्द देव जी (जयपुर) तथा रतनबिहारी जी व दाऊजी (बीकानेर) के मंदिर व मूर्तिकला इसके प्रमाण हैं। इसके पश्चात् भारतीय मूर्तिकला का एक प्रकार से अंत ही होने लगा था। मूर्तियाँ व मंदिर तो बहुत बनते रहे पर उनमें कला का चमत्कार, जीवन्तता, सौन्दर्य, अलंकारिता, लयात्मकता व गतिशीलता का अभाव है। जयपुर के मूर्तिकार शास्त्रीय पद्धति से मूर्ति निर्माण में आज भी कार्यरत हैं। ये मूर्तियाँ देश–विदेश के मंदिरों में आज भी प्रतिष्ठित होती हैं।

अभ्यास प्रश्न

लघुउत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थान के प्रमुख प्राचीन कला केन्द्र कौन–कौन से हैं ?
2. शुंगकालीन राजस्थान के मूर्तिशिल्प की विषय–वस्तु क्या थी ?
3. आबानेरी कहाँ स्थित है तथा यहाँ की मूर्तियों के क्या विषय रहे हैं ?
4. सहस्र बाहु (सास–बहु) के मंदिर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

वर्णनात्मक प्रश्न

1. राजस्थान की मूर्तिकला का वर्णन करते हुए देलवाड़ा के जैन मंदिर की विशेषता बताइये।
2. रणकपुर के शिल्प वैभव की विशद् व्याख्या कीजिए।